दर्शनपाहुड़ की १३वीं गाथा चलती है। जो कोई धर्मीजीव होने पर भी, दूसरे मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा जानने पर भी उन्हें लज्जा, गारव, और भय से वन्दन करे, आदर करे तो वह भी सम्यग्दर्शनरहित ही है। उसे बोधि रीति है नहीं। है न? बोधि शब्द है। **'तेसिं पि णत्थि बोही'** यहाँ अधिकार यह चलता है कि मूलसंघ जो अनादि का दिगम्बर पन्थ है, मोक्ष का मार्ग (है, वह) मुनि वीतरागी दशा हो, बाह्य में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हों, शरीर की अवस्था नग्न हो, ऐसी मुद्रा को जैनदर्शन, जैनधर्म का मत, जैनधर्म का स्वरूप कहने में आता है। उसमें से भ्रष्ट हुए, उस सम्प्रदाय को छोड़कर अपनी दृष्टि से भ्रष्ट होकर नया पन्थ निकाला। जयन्तीभाई! ऐसो को वन्दन और आदर और आहार-पानी

देना, लज्जा, भय और अभिमान गारव आदि आयेगा, वे भी बोधिरहित ही हो जाते हैं। क्योंकि पाप करे, करावे और उसे सम्मत हो, (वह) तीनों समान हैं। समझ में आया? मनसुखभाई! ऐसी जवाबदारी बड़ी कठिन है।

पूरा मार्ग वीतराग का सर्वज्ञपरमेश्वर का सनातन धर्म, वह अन्तर में वीतरागदशा और बाह्य में नग्नदिगम्बर मुद्रा, बहुत तो बाह्य में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प (होते हैं)। वह स्थिति जैनधर्म की, जैनदर्शन की अनादि की है। अनन्त काल ऐसा मार्ग अनादि-अनन्त है। समझ में आया? ऐसे धर्म से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर आदि। स्थानकवासी... हों! जयन्तीभाई! आये? ऐसो को विनय, आदर आदि करे, पैर पड़े, धर्मबुद्धि से आहार-पानी आदि दे तो वे सब जैसे वे हैं, विनय करनेवाले वैसे ही गिनने में आते हैं। लो, यहाँ तक आया। **अनुमोदन करते हैं। करना, कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं।** सेठी! क्या (कहते हैं)?

मुमुक्षु : जवाबदारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें जवाबदारी क्या? वस्तुस्थिति ऐसी है।

अब कहते हैं, **यहाँ लज्जा तो इस प्रकार है कि हम किसी की विनय नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे यह उद्धत है,...** इसीलिए तो यह लड़के और सब उद्धत हो गये। कहे न? वहाँ समान न माने तो। सेठी का दृष्टान्त लिया। लो, सेठी! यदि ऐसा नहीं करें तो **लोग कहेंगे यह उद्धत है, मानी है, इसलिए हमें तो सर्व का साधन करना है।** अपने को तो सबका मन रखना है। समझ में आया? जाधवजीभाई!

मुमुक्षु : पुराने हों उनकी बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने को क्या करना? चिमनभाई! यह चिमनभाई को कहते हैं। पुराने परिचित किसे कहना? आहाहा! जहाँ भ्रष्ट है, श्रद्धा से भ्रष्ट, मार्ग से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट, वीतरागचारित्र से भ्रष्ट हैं, भले वे साधु नाम धराते हों। आचार्य, उपाध्याय (कहलाते हों) यह तो कल कहा न? ऐसे मत के प्रमुखों की त्रस की स्थिति पूरी होने को आयी है। मिथ्यामत के प्रमुख, उनके सेठ, संघ के संघवी, सेठरूप से सामने बैठें, उनके आधार से सब संघ माने, ऐसे सब सेठ भी कहते हैं, सत्य धर्म से भ्रष्ट के प्रमुख होते हैं, उन सबकी

त्रस की स्थिति पूरी होने को आयी है। ऐसी बात है, बापू! क्या हो? मार्ग तो ऐसा है। ऐ.. रविभाई! यह श्वेताम्बर है न,... यहाँ आये हैं? हिम्मतभाई आये हैं? ठीक, आज अवकाश है, रविवार है।

इस प्रकार लज्जा से दर्शनभ्रष्ट के भी विनय... वन्दन, आदर करे तो वह भी उनके जैसे हैं। अपने को सबका मन रखना, किसी को ऐसा न हो। अपने को बनाये रखना और सब धर्मी है न, ये लोग भी धर्म करते हैं न, ऐसा मानकर ऐसे अज्ञानी धर्म से भ्रष्ट हैं, उनका आदर करे, विनय करे, वे सब मिथ्यादृष्टि, बोधि अर्थात् वीतराग के मार्ग से दूर हैं। यहाँ सब व्याख्या स्पष्ट चलती है, हों! सोनगढ़ में। बाहर नहीं चलती। कल रामजीभाई कहते थे। अहमदाबाद में और भावनगर में और मुम्बई में (ऐसा नहीं चलता)।

मुमुक्षु : वहाँ मर्यादा में चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बस। यह बात। वहाँ उसकी मर्यादा में ऐसी बात आती है। जो समझे वह समझे। यहाँ तो स्पष्ट बात (चलती है)। सेठी का उदाहरण देकर यहाँ तो कहा जाता है। सेठ सामने के व्यक्ति। बाद में कहेंगे, तुम तो पहले से मानते आये हो। तुम्हारा घर बड़ा कहलाता है। तुम्हारे गाँव में साधु आवें तो तुम्हारे आहार-पानी देना पड़े। एक बार, दो बार कभी एक बार तो कहो, ऐ सेठी! लज्जा से भी करे तो दर्शनभ्रष्ट के समान है।

तथा भय इसप्रकार है कि यह राज्यमान्य है... बड़ा साधु, कोई ऐसे आचार्य हों। राजा उन्हें मानता है, भाई! और उन्हें कुछ मन्त्र-तन्त्र आते हैं। **मंत्र, विद्यादिक की सामर्थ्ययुक्त है, इसकी विनय नहीं करेंगे तो कुछ हमारे ऊपर उपद्रव करेगा;...** ऐसा करके उसका विनय और आदर करे तो भी वह भ्रष्ट है। आहाहा! पण्डितजी! मार्ग तो यह है, भगवान! जानते हैं कि यह तो श्रद्धाभ्रष्ट है, तत्त्व से विरुद्ध है, सनातन वीतरागमार्ग दिगम्बर धर्म केवली ने कहा हुआ, प्ररूपित किया हुआ और जाना हुआ, अनुभव किया हुआ, उस मार्ग से विमुख होकर, भ्रष्ट होकर सब नया खड़ा किया है। समझ में आया? ऐसों को भय से भी। लज्जा से और फिर भय से विनय आदि करे। **हमारे ऊपर उपद्रव करेगा; इस प्रकार भय से विनय करते हैं...** तो भी वे सब उसके जैसे हैं,

क्योंकि पापी है, उसका अनुमोदन करते हैं, इसलिए अनुमोदन करनेवाले वैसे ही मिथ्यादृष्टि बोधिरहित हैं। मार्ग ऐसा है। कहो, सुजानमलजी! गारव। अब रस गारव, गारव।

गारव तीन प्रकार कहा है; रसगारव, ऋद्धिगारव, सातागारव। रसगारव अर्थात्? मीठे-मीठे आहार मिले, इष्ट मिले, पुष्ट भोजन, पानी, मकान ऐसा मिलेए **तब उससे प्रमादी रहता है...** और दरकार नहीं करता कि मैं किसकी विनय करता हूँ और किसे मानता हूँ, इसकी दरकार नहीं करता। समझ में आया? जिसकी तड़ में लड्डू, ऐसा कहते थे न? हमारे एक थे। उसमें हम तो मिलते हैं। ऐई! वासुदेव! वहाँ से कुछ मिले, जीमन मिले, अमुक मिले। पहनने को मिले और जहाँ **मिष्ट, इष्ट, पुष्ट...** शब्द कैसे प्रयोग किये हैं, देखो! मिष्ट, इष्ट, पुष्ट। मीठा आहार, इष्ट आहार-प्रियकर और पुष्ट। ऐसा भोजन और पानी और मौसम्बी मिलती हो तो.. आहाहा! ऐसे गारव में, अभिमान में उसके अन्दर में प्रमादी रहकर दरकार नहीं कि मैं किसकी विनय करता हूँ और किसकी नहीं करता। भानरहित सब जीव बोधिरहित हैं। भगवान के मार्ग से रहित हैं। रिखबदासजी! तुम्हारे गाँव में तो बहुत बड़ी गड़बड़ आयी है।

ऋद्धिगारव ऐसा है कि कुछ तप के प्रभाव आदि से ऋद्धि की प्राप्ति हो... कोई ऐसा हो गया हो। राजा माने, करे, वह माने, कोई लब्धि हो उस प्रकार के पुण्य के कारण हो गयी हो। **ऋद्धि की प्राप्ति हो उसका गौरव आ जाता है,...** अभिमान हो जाता है। **उद्धत, प्रमादी रहता है...** दरकार नहीं, हम तो ऐसे हैं। हमें माननेवाले बहुत हैं, हम तपस्या करते हैं। बारह-बारह महीने के आंबेल करते हैं, ऐसे आंबेल हमने तो वर्ष में छियानवें बार किये हैं। अमुक जिन्दगी में और अमुक और अमुक। उसके कारण लोगों को मान बढ़ जाता है और बाहर के तप के कारण कोई ऋद्धि भी हो जाती है। उस ऋद्धि की प्राप्ति के कारण गौरव (हो जाता है), उद्धत, प्रमादी रहे और दरकार करे नहीं।

तथा सातागारव... शरीर निरोग हो। किसी दिन रोग न आया हो। दरकार न हो। **कुछ क्लेश का कारण न आये...** शरीर में कभी दु:ख ही न आया हो, सौंठ भी न लगायी हो, ऐसा निरोग शरीर (हो), **तब सुखीपना आ जाता है,...** साताशिलिया अपनी भाषा में समझे न? साताशिलिया। अनुकूलता में बस खाना-पीना और लहर। गद्दे तकिये सोने को (मिले), ऐसा जानकर **उससे मग्न रहते हैं - इत्यादिक गारवभाव की**

मस्ती से... मस्ती आ जाए। रस में मस्ताई आ जाए। किसी को गिने नहीं। अब दूसरों को क्या गिने, अपने तो सबको मानते हैं। अपने तो समभाव है, भाई! अपने जयनारायण, सर्वत्र चावल रखना (चढ़ाना)। शाम और सवेरे में वर्ष लगे तब जाते हैं न? लक्ष्मी पूजने। सब मूढ़ जीव हैं। कहाँ है लक्ष्मी मन्दिर? बोटाद में है। लक्ष्मी का मन्दिर है, वहाँ जाते हैं। बहुत जाते हैं। ऐसे मूढ़ जीव, जिन्हें अभी व्यवहार की भी खबर नहीं होती, वे सामायिक, प्रौषध और तपस्या करें, बिना एक के शून्य, मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? गारव की मस्ती हो जाती है।

भले-बुरे का कुछ विचार नहीं करता,... यह वह क्या करता हूँ? ...खबर नहीं। **तब दर्शनभ्रष्ट की भी विनय करने लग जाता है। इत्यादि निमित्त से दर्शन-भ्रष्ट की विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है;...** जयन्तीभाई! सत्यमार्ग था, ऐसा प्रसिद्ध किया है। समझ में आया? **तो उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है;... 'पावं अणुमोयमाणाणं'** है न पाठ में। **उसे भला जाने तो आप भी उसी समान हुआ,...** उसे भला जाने तो स्वयं उसके जैसा हुआ। कितने ही तो और ऐसा कहें, अपने से तो अच्छे हैं। बात सत्य।.....

यहाँ तो वीतराग जैन स्वरूप तीर्थंकरों ने कहा हुआ जैनमार्ग, वह दिगम्बरमार्ग अर्थात् दिगम्बर मुनि की दशा, वह जैनधर्म, वह जैनदर्शन, वह जैनदर्शन का मत। समझ में आया? ऐसे मत से हटकर विरुद्ध श्रद्धा (होकर) नये शास्त्र बनाये और नया वेश बनाया और उसे मार्ग माना। ऐसों की कोई विनयादि करे तो वह भी पापी है। कहो, मोहनभाई! न्यालभाई! है या नहीं? वहाँ सेठिया थे न? सेठिया सामने बैठे। पाट के पाये के पास। ऐसा स्वरूप है। वडिया.. वडिया। वडिया कहलाता है? वडा। वडा के सेठ, नगरसेठ। समझ में आया? जय नारायण करना पड़े। संघ छोड़ा जाए नहीं। सेठ छोड़े तो कहे यह नहीं मानता होगा इसे? गाँव में चर्चा होवे। चलो, भाई! सुनने तो जाएँ अपन। इसलिए वह भी उसका आदर किया, ऐसा कहते हैं। वह भी मिथ्यात्व को ही पोषण दिया है। वह भी मिथ्यादृष्टि है। विपरीत श्रद्धा को पोषण करता है, ऐसा कहते हैं। लो।

आप भी उसी समान हुआ, तब उसके बोधि कैसे कही जाये? मूल अन्तिम शब्द यह है न? **'तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं'** कुन्दकुन्दाचार्य, सर्वज्ञ

परमेश्वर तीर्थंकरों ने कहा हुआ यह प्रसिद्ध करते हैं। कहो, समझ में आया? भगवानदास अभी यहाँ नहीं है। उसे जहाँ हो वहाँ बैठावे। बाबा होवे तो भी बड़ा गृहस्थ व्यक्ति, इसलिए सामने (बैठावे)। आहाहा!

अब दूसरी बात करते हैं। कैसा मार्ग होता है, यह बात करते है। जैनदर्शन, जैनधर्म, जैनभाव और द्रव्यमुद्रा, जैन की भावमुद्रा और द्रव्यमुद्रा कैसी होती है? यहाँ जो सच्चा-सत्य मुनिपना है, उसे यहाँ जैनदर्शन और जैनधर्म कहने में आया है। क्योंकि वहाँ मोक्षमार्ग शुरु हुआ है न!

गाथा-१४

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि।।१४।।

द्विविधः अपि ग्रन्थत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति।
ज्ञाने करणशुद्धे उद्भभोजने दर्शनं भवति।।१४।।

दोनों परिग्रह त्याग तीनों योग में संयम-सहित।
के कहा दर्शन ज्ञान शुद्ध-करण कराहारी-सहित।।१४।।

अर्थ **– जहाँ बाह्याभ्यंतर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे, ऐसे खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इसप्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।**

भावार्थ **– यहाँ दर्शन अर्थात् मत है; वहाँ बाह्य वेष शुद्ध दिखाई दे वह दर्शन; वही उसके अंतरंगभाव को बतलाता है। वहाँ बाह्य परिग्रह अर्थात् धन-धान्यादिक और अंतरंग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादिक, वे जहाँ नहीं हों, यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना, त्रस-स्थावर जीवों की दया करना, ऐसे संयम का मन-वचन-काय द्वारा शुद्ध पालन हो और ज्ञान में विकार करना, कराना, अनुमोदन करना – ऐसे तीन कारणों से विकार न हो और निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना**

– इसप्रकार दर्शन की मूर्ति है, वह जिनदेव का मत है, वही वंदन–पूजनयोग्य है, अन्य पाखंड वेष वंदना–पूजा योग्य नहीं है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि।।१४।।

***अर्थ* – जहाँ बाह्याभ्यंतर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो...** देखो! यह मुनिपना ऐसा होता है। बाह्य और अभ्यन्तर दोनों। अकेले बाह्य नग्न हो गये, वे कोई मुनि नहीं हैं। मात्र अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वह भी मुनि नहीं है। यह तो पहले आ गया है। भेदज्ञान से बाह्य, नहीं आया? (गाथा ११) **भेदविज्ञान द्वारा अपने आत्मस्वरूप का चिन्तवन करना, अनुभव करना...** माने ऐसा सब। अट्ठाईस मूलगुण हो, नग्न मुनि हो, छह द्रव्य माने परन्तु वह सब विकल्प और निमित्त से भेदज्ञान करके आत्मा का अनुभव करे, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उसे अन्दर भले क्रिया वह राग की हो, मुनि को निमित्त नगण्य होता है परन्तु अन्दर में तो उससे भिन्न भेदज्ञान के कारण अन्दर स्थिर होते हैं। स्वरूप में उनकी दृष्टि और शुद्ध उपयोग में होते हैं।

दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो... वस्त्र-पात्र का (एक) टुकड़ा भी न हो, नग्न दिगम्बर मुद्रा। आहाहा! यही अनादि का सनातन जैनधर्म का स्वरूप, जैनधर्म का मत, जैनधर्म का स्वभाव ऐसा होता है। समझ में आया? यह भी सच्चा और वह भी सच्चा, ऐसे दोनों नहीं चलते – ऐसा कहते हैं। ऐई!

मन–वचन–काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो... मन, वचन और काया से अन्दर संयम की स्थिरता हो। वस्तु के स्वभाव में मन, वचन, काया सहित नौ-नौ कोटि से राग से भिन्न करके अपने स्वरूप में संयम में हों। उसे जैनमुनि, जैनदर्शन, जैन का मत, और जैन की मुद्रा कहा जाता है। आहाहा! गजब काम! **तथा कृत–कारित–अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो...** देखो! ज्ञान कैसा सच्चा होता है? – कि उसका सम्यग्ज्ञान अपने को होता है। करावे उसे भी सच्चा ज्ञान होता है और जिसका

ज्ञान सच्चा हो, उसे अनुमोदन करे। खोटे ज्ञान को अनुमोदन करावे, ऐसा नहीं हो सकता। बहुत जानपना है... ओहोहो! अमुक जोरदार है। भले अपना सम्प्रदाय नहीं है परन्तु जानपना बहुत, विद्वान बहुत। धूल का विद्वान है। समझ में आया? .....भाई! यह सब बहुत कठिन बात है।

मुमुक्षु : न मिलते हों तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : न मिलते हों तो सच्ची श्रद्धा में जो हो, उसे मानना। यहाँ तो मार्ग यह है, ऐसा कहा है न? ऐसा तो निर्णय करे कि मार्ग ऐसा है। होवे तो जो सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी हो, उसे मानना, परन्तु पूर्ण जैनदर्शन का रूप तो मुनि है, (ऐसा) यहाँ तो कहना है। आहाहा! समझ में आया?

कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण (नौ कोटि से) जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो... ऐसा कहते हैं। ज्ञान में खोटा कोरा जिसका ज्ञान है, उसे करे नहीं, करावे नहीं और अनुमोदन करे नहीं। बाद में तो कहेंगे कि सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान सच्चा नहीं होता। बाद की गाथा में लेंगे। यहाँ तो पहले से यह उठाया है। चाहे जितना जानपना हो परन्तु सम्यग्दर्शन, आत्मा का अनुभव और दृष्टि नहीं है, उसे ज्ञान सच्चा नहीं होता। आहाहा! जिसे करण, करावन, अनुमोदन में भी ज्ञान की शुद्धि निश्चित वर्तती हो। खोटा ज्ञान स्वयं को न हो, खोटा ज्ञान करावे नहीं और खोटा ज्ञान हो, उसे अनुमोदन करे नहीं। सच्चा ज्ञान हो, सच्चा ज्ञान करावे और सच्चा ज्ञान हो, उसे अनुमोदन करे। देखो! ऐसा डाला है। आचार्य ने अन्दर करण डाला है। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई!

और **तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे, ऐसे खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** खड़े-खड़े आहार ले, हाथ में। वह उनके लिये बनाया हुआ न हो, कराया न हो, अनुमोदन न हो—ऐसा आहार। उनके लिये बनाया आहार ले तो भी उसमें अनुमोदना आ जाती है। वह वस्तु ऐसे करे नहीं। उद्दिष्ट आहार। पण्डितजी! चौका लगाओ, आहार-पानी लेने आओ, यहाँ बहुत... अरे! मार्ग तो यह है, भाई! क्या हो? लोगों ने ऐसा बचाव करके मार्ग को भ्रष्ट कर डाला है। क्या करना? क्या करना अर्थात्? साधुपना किसलिए लिया था? साधुपना है नहीं न! अभी दृष्टि का ठिकाना नहीं और ऐसे आचरण लेकर बड़े होकर बैठे और आचरण का व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया?

जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे, ऐसे खड़े रहकर पाणिपात्र में... खड़े-खड़े पाणि (पात्र) में-हाथ में आहार ले। पाणि अर्थात् हाथ। पात्र-वात्र हो, वह जैनधर्म से भ्रष्ट है और अकेले पात्र-वात्र न हो, इसलिए (साधु) है, ऐसा नहीं। स्वरूप की दृष्टि से भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट है। बाह्य-अभ्यन्तर दोनों कहा न? अभी आगे स्पष्टीकरण करेंगे। अकेला नहीं कहते कि बाह्यलिंग ऐसा, बाह्यलिंग ऐसा। (साथ में) अभ्यन्तर राग के विकल्प का कर्तापना नहीं है। अकेला ज्ञानस्वभाव है, ऐसा प्रगट हुआ है, ऐसा भान है, उसमें स्थिरता है। उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं और मुद्रा नग्न होती है, उसे जैनदर्शन का रूप, जैनमुद्रा और जैन का मत उसे कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव का मत। समझ में आया?

इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है। देखो! देखो! यह दर्शन की व्याख्या की। **'उब्भसणे दंसणं होदि'** ऐसा है न? **'उब्भसणे दंसणं होदि'** देखो! उनके लिये किया हुआ, कराया हुआ नहीं लेते और ज्ञान शुद्ध होता है तथा बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग होता है, उसे मूर्तिमन्त दर्शन कहा जाता है, वह जैनदर्शन का रूप है। आहाहा! भीखाभाई! जैन अर्थात् वस्तुदर्शन। ऐसा वस्तुदर्शन है। उसे जो माने, वह सम्यग्दृष्टि है। भले स्वयं साधु नहीं हो सकता। समझ में आया? परन्तु ऐसा ही मार्ग है, इससे दूसरा मार्ग है, वह सब भ्रष्ट हुए, उन्होंने निकाला है—ऐसा अन्तर में माने, उसे भेदज्ञान होकर स्वरूप की दृष्टि होवे तो वह भी धर्मी है। धर्म का ऐसा पूरा रूप भले उसके पास न हो परन्तु पूरा रूप ऐसा है—ऐसा उसे प्रतीति में और भान में वर्तता होता है। समझ में आया?

इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन... ऐसी मूर्ति अर्थात् जिसका अन्तर का स्वरूप और बाह्य निर्दोष आहार-पानी लेते हों, निर्दोष जिनका ज्ञान हो और निर्दोष जिनकी अन्तरदशा हो, निर्दोष जिनकी बाह्य मुद्रा हो। दिगम्बर मुद्रा। उसमें कुछ भी फेरफार नहीं हो, उसका नाम मूर्तिमन्त जैन का स्वरूप, मार्ग का स्वरूप, वह मूर्तिमन्त दर्शन कहा जाता है। दास! इसे दर्शन कहते हैं। इसे समकित कहते हैं, ऐसा नहीं। यह जैनदर्शन अर्थात् मार्ग का-दर्शन का रूप ही यह है। उसे माने और उसे पहिचाने और उसे अन्दर राग से भिन्न करके अनुभव करे, वह समकिती है। उसमें यदि कहीं देव-गुरु-शास्त्र में अन्तर माने तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं रहता। भारी कठिन काम! श्रीमद् के माननेवालों को ऐसा सुने तो भारी कठिन पड़ता

है। वहाँ तो सब धीमा चलता है। कहा था न? वहाँ दीक्षा ली थी। चेतनजी ने। नहीं? किसी के पास ली थी। वरखचन्दजी के पास ली थी। आहाहा! कहाँ दीक्षा? किसे कहना दीक्षा?

***भावार्थ* – यहाँ दर्शन अर्थात् मत है;...** पहले से कहा है '**दंसणमग्गं**'। वहाँ भी धर्म का स्वरूप, मत का स्वरूप ऐसा है – यह कहा। गजब बात, भाई! पाठ में से ही निकाली है, हों! कहने का आशय आचार्य का यह है। आहाहा! आशय यह है। लोगों को पक्षपात से ऐसा लगता है कि ऐसा है और वैसा है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे पक्षपात में खड़े नहीं करते, इसलिए कितनी ही गाथा प्रक्षेप है और अमुक है... उनके सुधरे हुए। अरे! मार्ग ही यह है। प्रक्षेप-प्रक्षेप क्या? जब दर्शन के मतों में संघर्ष था, तब यह लिखा गया है; इसलिए इसमें आ गया है। धूल भी नहीं, सुन न! मार्ग ही त्रिकाल ऐसा है। बाहर में चाहे जितने मतों में संघर्ष हो, लूखा हल्का हो, उत्कृष्ट हो, उसके साथ इस मार्ग को कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

यहाँ दर्शन अर्थात् मत है;... जैनदर्शन का मत क्या है? – कि **वहाँ बाह्य वेष शुद्ध दिखाई दे, वह दर्शन; वही उसके अंतरंगभाव को बतलाता है।** बाह्य शुद्ध (हो), एकदम नग्न। आहाहा! अत्यन्त वीतराग मुद्रा दिखायी दे। जैसा बालक हो, वैसी उनकी मुद्रा हो। आहाहा! अकेले नग्न नहीं, परन्तु **बाह्य वेष शुद्ध दिखाई दे वह दर्शन; वही उसके अंतरंगभाव को बतलाता है।** अन्तरंग भाव उसका वीतराग होता है, ऐसा उसे ख्याल में आता है। ऐसा नग्न है, इसलिए वीतरागता है—ऐसा नहीं परन्तु नग्नदशा सहज बन गयी, वहाँ आगे अन्दर में वीतरागता ही होती है, ऐसा दिखता है। समझ में आया? यह गजब बातें, भाई!

दर्शन अर्थात् मत है; वहाँ बाह्य वेष शुद्ध दिखाई दे, वह दर्शन; वही उसके अंतरंगभाव को बतलाता है। इसमें ऐसा नहीं लेना, हों! कि नग्नपना है, इसलिए अन्तरभाव में वीतराग है, ऐसा लेना—ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि जिसे ऐसा विकल्प जहाँ उठ (छूट) गया है, वस्त्र रखने का, पात्र रखने का, इतनी दशा जहाँ अन्दर हो गयी है, उसकी बाह्य मुद्रा से अनुमान होता है कि ओहो! इसकी वीतरागता ऐसी होती है। समझ में आया? अकेले विकल्प से यह छोड़ा, रखा, वह तो वस्तु ही कहाँ है? अन्तर की निर्विकल्पदशा, साधुपद की दशा जहाँ अन्तर में प्रगट हुई है, उसे तो ऐसा ही लिंग नग्न

सहज पर की अपेक्षारहित होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वही उसके अंतरंगभाव को बतलाता है।**

वहाँ बाह्य परिग्रह अर्थात् धन-धान्यादिक... नहीं होते। धन-धान्यादिक अर्थात् वस्त्र-पात्र कुछ नहीं। **अंतरंग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादिक,...** लो! अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व। राग को अपना मानना, देह की क्रिया अपनी मानना—ऐसा जो मिथ्यात्व का परिग्रह, उसे नहीं होता। समझ में आया? बाह्य परिग्रहरहित है, ऐसे अन्तर मिथ्यात्व और रागादि के परिग्रह से रहित है। दोनों साथ में चलते हैं ऐसे, अन्तर वीतरागता और बाहर की वीतरागता की मुद्रा। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न? बाहर से आँखें देखकर यह वीतरागता है... वीतरागता की भूमिका है, इसलिए उनकी भूमिका में ऐसे ही विकल्प होते हैं, ऐसा निर्णय कर। प्रवचनसार में चरणानुयोग की शुरुआत करते हुए उसमें आता है। धन्य अवतार! जिसका सफल हुआ, जन्म-मरण को मिटाने का अवतार किया और ऐसा ही मार्ग है, कहते हैं। समझ में आया? ऐसे को जैनदर्शन कहते हैं, बाकी जैनदर्शन नहीं कहलाता। वाड़ा में चाहे जैसे बड़े-बड़े नाम दें, उपाधियाँ दें, तरणतारण आचार्य भगवन्त... उपाध्याय। आहाहा! भारी कठिन काम। यह व्यक्ति के प्रति निन्दा की बात नहीं है, हों! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! मार्ग की सैद्धान्तिक स्थिति तीनों काल, तीन लोक में यही वस्तु की मर्यादा है। उसमें दूसरा क्या आवे? समझ में आया? इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञ से जाना हुआ, देखा हुआ, अनुभव किया हुआ तीनों काल में यह मुक्तिमार्ग है, प्रणेता (हम खड़े हैं) ऐसा कहते हैं न? आहाहा! जहाँ वीतरागदशा मुनिपने की हो, वहाँ कितनी मर्यादा विकल्प की होती है और संयोग कितना होता है, वह सब हमारे अनुभव में वर्तता है, इसलिए हम इस मार्ग को कहेंगे। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व और कषाय। अनन्तानुबन्धी आदि कषायें जहाँ नहीं हैं, तीन कषाय (चौकड़ी) जहाँ नहीं, मिथ्यात्व नहीं, **यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो...** यथाजात। जैसा जन्मा, वैसा दिगम्बर। वैराग्य की मूर्ति, वैराग्य का पुतला हो। रोम-रोम में वैराग्यता परिणमित हो गयी हो। पिण्ड आत्मा में। समझ में आया? उपशमरस जिसकी आत्मा की पर्याय में ढल गया है, ऐसे उपशमरस ढले, ऐसी ही मूर्ति दिगम्बर। ऐसे शान्त... शान्त...

शान्त... । आहाहा ! समझ में आया ? वलुभाई ! यह ऐसा मार्ग है । **यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो...** जैसे जन्मे वैसे । और जैसा यथाजात आत्मा का स्वरूप है, वैसा, अन्दर हो ।

तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना,... इन्द्रिय और मन और **त्रस-स्थावर जीवों की दया करना,...** परसन्मुख का असंयम का विकल्प नहीं, ऐसा उसे संयम हो । **'संजमो ठादि'** है न ? **'जोएसु संजमो ठादि' इन्द्रिय-मन को वश में करना, त्रस-स्थावर...** एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी का, अग्नि का, वायु का, वनस्पति का यह... एकेन्द्रिय । उसे भी घात कर कोई आहार दे, पानी दे तो ले नहीं और चलते हुए भी किसी को दुःख हो, ऐसा प्रमाद उन्हें नहीं होता । आहाहा ! चलते सिद्ध हैं ! मुनि अर्थात ? आहाहा ! परमेश्वर ! अल्प काल में परमेश्वर केवलज्ञान होनेवाला है, ऐसा जैनमार्ग वीतराग का है । समझ में आया ?

जीवों की दया करना,... दया अर्थात् नहीं मारना । **ऐसे संयम का मन-वचन-काय द्वारा शुद्ध पालन हो...** ऐसी मुनिदशा जहाँ अन्दर हो, ऐसा कहते हैं । **ज्ञान में विकार करना, कराना, अनुमोदन करना ह्न ऐसे तीन कारणों से विकार न हो...** मिथ्याज्ञान न हो, ऐसा कहते हैं । देव-गुरु-शास्त्र का, षट्द्रव्य आदि का ज्ञान मिथ्या न हो । उनके विषय में विकार करना, विपरीत ज्ञान करना, कराना या अनुमोदना (न हो) । गजब बात ! **'णाणम्मि करणसुद्धे'** जिसके ज्ञान के तीनों करण शुद्ध हों । कहीं भी मिथ्याज्ञान का अनुमोदन न करे, मिथ्याज्ञान को कराना (न हो) भले करो, थोड़ा करो तो सही (ऐसे करावे नहीं) । वे कहते हैं न ? पहले से लड़कों को न समझाना । ऐई ! बालपोथी तुम्हारी । हरिभाई ने की है वह । ....है न ? पढ़ा तो (कहे), अरे ! ऐसा पहले लड़कों को (सिखलाना ?) तब क्या मिथ्या कहना ? भाई भी कहते थे । नहीं ? देवचन्दजी ! लड़कों की परीक्षा ली, तब रतनजी कहे, ऐसा पहले नहीं सिखलाया जाता । तब खोटा सिखलावे ?

ज्ञान तो सत्य करना, कराना और अनुमोदन करना । उसमें असत्य तो कहीं आता नहीं, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! क्या हो ? जगत को... इसलिए यह मेल नहीं खाता । ऐसा ही मार्ग उसका शुरुआत से होता है । समझ में आया ? ज्ञान भी सच्चा करे, ज्ञान सच्चा करावे और कर्ता को सच्चे को अनुमोदन करे । खोटा करे, उसे पहले खोटा कराना, फिर सच्चा कराना, ऐसा होगा ? बालक किसलिए मानना उसे ? बालक कहाँ है ? वह तो आत्मा है ।

बालक देह के संयोग स्थिति से आत्मा को वैसा मानना, वह बात झूठी है। आत्मा बालक कैसा ? बालक-युवक कैसा ? आत्मा जड़ कैसा ? अर्थात् वृद्धावस्था कैसी ?

यह भगवान आत्मा तो ज्ञान और आनन्द के जीवन से जीनेवाला तत्त्व है, उससे टिकनेवाला तत्त्व है। कहीं शरीर के कारण टिकता है ? ज्ञानस्वभाव, आनन्दभाव के प्राण से अनादि से टिका है। कहते हैं कि ऐसे को-धर्मी को ज्ञान में विकार अपना नहीं होता और दूसरे को होवे, उसे कराता नहीं और करता हो, उसे अनुमोदन नहीं करता। ऐसा निर्विकारी निर्दोष ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा कि ज्ञान में कुछ भूल हो, होनेवाली हो तो ? कि नहीं, ज्ञान निर्दोष होता है।

और निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना... निर्दोष आहार-पानी, वह भी हाथ में लेकर। पाणिपात्र है न ? हाथ पात्र। खड़े रहकर (लेते हैं)। वह **दर्शन की मूर्ति है,...** वह जैनदर्शन की मूर्ति है। वीतराग ने कहे हुए शास्त्र का यह मार्ग है। समझ में आया ? जयन्तीभाई ! यह तो सब सम्प्रदाय का आया। कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने सम्प्रदाय का पक्ष पोषण किया है (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे ! चल... चल..। ऐसे और ऐसे.. वीतराग का स्वरूप ही ऐसा है, भाई ! समझ में आया ? ऐसी जो जैनमूर्ति। ऐसा कहा न ? देखो न ! **इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है, वह जिनदेव का मत है,...** वह जिनदेव का अभिप्राय ऐसा मोक्ष का मार्ग होता है। उसे जिनदेव का अभिप्राय कहा जाता है। समझ में आया ? **वही वंदन-पूजनयोग्य है, अन्य पाखंड वेष वंदना-पूजा योग्य नहीं है।** यह दिगम्बर मुद्रा और दिगम्बर वीतरागी दशा, इसके अतिरिक्त दूसरा पाखण्डी वेश पूजने के, वन्दन के योग्य नहीं है। आहाहा ! गजब भाई ! यह १४वीं (गाथा) पूरी हुई।

गाथा-१५

आगे कहते हैं कि इस सम्यग्दर्शन से ही कल्याण-अकल्याण का निश्चय होता है -

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि।।१५।।

सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः।
उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति।।१५।।

सम्यक्त्व से सद्ज्ञान उससे सर्व भाव सुज्ञात हों।
नित अर्थ उपलब्धक ही जाने श्रेय अरु अश्रेय को।।१५।।

***अर्थ* – सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है तथा सम्यक्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति अर्थात् जानना होता है तथा पदार्थों की उपलब्धि होने से श्रेय अर्थात् कल्याण और अश्रेय अर्थात् अकल्याण इन दोनों को जाना जाता है।**

***भावार्थ* – सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है, इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है तथा जब पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जाये तब भला-बुरा मार्ग जाना जाता है। इसप्रकार मार्ग के जानने में भी सम्यग्दर्शन ही प्रधान है।।१५।।**

गाथा-१५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस सम्यग्दर्शन से ही कल्याण-अकल्याण का निश्चय होता है – अन्तर का सम्यग्दर्शन है, ऐसा जैन का मार्ग है, ऐसे मार्ग का अन्तर में भान होकर प्रतीति हुई है, ऐसे समकित दृष्टि को ही कल्याण-अकल्याण का निर्णय होता है, अज्ञानी को कल्याण-अकल्याण का निर्णय नहीं होता।

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि।।१५।।

***अर्थ* – सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है...** जिसने आत्मा शुद्ध आनन्द परिपूर्ण भगवान को देखा, जाना—ऐसा अन्दर जानने में आकर प्रतीति हो, ऐसा सम्यग्दर्शन हो, वहाँ ज्ञान सच्चा होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ ज्ञान कुछ भी गड़बड़ में-विपरीतता में चढ़े बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? **सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है...** अन्दर चैतन्यस्वरूप ही वीतरागमूर्ति है। यह वीतरागमूर्ति तो बाह्य और अभ्यन्तर जैनदर्शन का रूप दिखलाया परन्तु यह आत्मा ही स्वयं अन्तर वीतरागस्वरूप

है। ऐसी अन्तर्मुख होकर प्रतीति सम्यक्त्व हुआ, उस सम्यक्त्वी का ही ज्ञान सच्चा होता है। जहाँ सम्यक्पना नहीं, वहाँ ज्ञान सच्चा नहीं होता। समझ में आया? भले थोड़ा ज्ञान हो परन्तु उसका ज्ञान सच्चा होता है। देखो! यह सम्यग्दर्शन का वजन है। दृष्टि की स्थिति है। दर्शनपाहुड़ है न! **सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है...**

तथा सम्यक्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि... कहते हैं। सम्यग्दर्शन हो, वहाँ सम्यक्ज्ञान होता है और सम्यक्ज्ञान में समस्त पदार्थ का विवेक होता है। जड़ चैतन्य, सत्य, असत्य आदि क्या है? द्रव्य, गुण, पर्याय (क्या है)? मार्ग, मार्ग से विरुद्ध, यह सब ज्ञान में इसका विवेक हो सकता है। समझ में आया? समयसार में तो एकदम टोटल का मार्ग कहकर बतलाया है। परन्तु उसमें यह सब होता है। समझ में आया? ऐसे का ऐसा मान ले कि समयसार में ऐसा है और माने सबका खीचड़ा। देव, गुरु, शास्त्र मिथ्या को भी माने और हमारे हो गया सम्यग्दर्शन, ऐसा नहीं हो सकता, इसके लिये यहाँ सम्यक् बतलाया है। आहाहा! भाई! यह तो तिरने का उपाय है। भवसमुद्र का अन्त लाने की अन्त की बात है। बाकी तो... अरे! यह क्या? चार गति का भव क्या? रागदाह, उसकी आकुलता का सब वेदन है। स्वर्ग में हो या नरक में हो। यह तो आकुलता तोड़ने के लिये नाश करने का उपाय है। वह राग से और पर से भिन्न आत्मा का अनुभव करके सम्यक्त्व करना, वह सम्यक्त्व होवे तो ज्ञान सच्चा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कभी पढ़ा है या नहीं? मगनभाई! अष्टपाहुड़ पढ़ा है कभी? पहले सुना था। आठ वर्ष पहले।....प्रवचनप्रसाद। अपने यह अमृतलालभाई। अमृतलालभाई थे न? वे संवत् २०१३ में गुजर गये हैं। २०१३ पहले पढ़ा था। यह और २०१७ में पढ़ा। २०१३ पहले पढ़ा था, उसमें आया था, सत्य बात है।

कहते हैं **सम्यक्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति अर्थात् जानना होता है...** सम्यग्दर्शन होवे तो सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान होवे तो उसे सब पदार्थ का वास्तविक बोध होता है। उसमें उसे कुछ फेरफार नहीं लगता। उसके ज्ञान में फेरफार आता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन है न! इसलिए उसके सम्यग्ज्ञान में पदार्थ का जैसा स्वरूप है, देव का, गुरु का, शास्त्र का, मोक्षमार्ग का, समकित का, ज्ञान का, चारित्र का, तप का, अज्ञान का, बालतप का, उपादान-निमित्त का, निश्चय-व्यवहार का... (सब ज्ञान सच्चा होता है)। समझ में आया? जहाँ सम्यग्दर्शन है, वहाँ सम्यग्ज्ञान

होता है और सम्यग्ज्ञान हो, वहाँ सब पदार्थों का यथार्थरूप का भान होता है, ऐसा कहते हैं। प्राप्ति अर्थात् उपलब्धि - जानना है।

तथा पदार्थों की उपलब्धि होने से... जब वस्तु का ज्ञान यथार्थ हुआ अर्थात् **श्रेय अर्थात् कल्याण और अश्रेय अर्थात् अकल्याण इन दोनों को जाना जाता है।** उसके ज्ञान में आ जाता है कि यह कल्याण का कारण है और यह अकल्याण का कारण है। समझ में आया? यह मार्ग कल्याण का मार्ग है और यह अकल्याण का है। ऐसा समकित होने से ज्ञान सम्यक् होता है, इसलिए पदार्थ का वास्तविक स्वरूप उसके ज्ञान में आ जाता है। इसलिए उसे कल्याण-अकल्याण का विवेक उसमें वर्तता है। आहाहा! यह तो अष्टपाहुड़ चलता है, अष्टपाहुड़। वे ऐसा कहते हैं, पहले यह बनाया है, फिर पंचास्तिकाय। अनुमान करते हैं। पहला हो या चाहे जो हो, मार्ग यह है। भावपाहुड़, मोक्षपाहुड़ की सभी गाथाएँ एक सरीखी जैसी आती है न, जितनी गम्भीरता समयसार की है, वह गम्भीरता इसमें नहीं है। भावपाहुड़ में। भले विस्तार से सब समझाया है... बहुत आवे, उसमें क्या? साधारणजन को समझाने के लिये उसे स्पष्ट स्वरूप है। प्रत्येक गाथा में भिन्न-भिन्न करके थोड़ा-थोड़ा अन्तर सब गाथाओं में। ....समझ में आया? प्रत्येक गाथा न्याय के मार्ग में क्या है, वह सीखते हों।

कल्याण और अकल्याण कहते हैं, उन दोनों का ज्ञान होता है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? जिसे सम्यग्दर्शन हो, उसका ज्ञान सच्चा होता है और वह ज्ञान सच्चा होता है, उसे सब पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् जानना होता है। यह जाना, उसमें कल्याण-अकल्याण के मार्ग दोनों उसके ज्ञान में आ जाते हैं। समझ में आया?

***भावार्थ* - सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है,...** आहा! ऐसा जैनदर्शन है, ऐसी उसे अन्दर में श्रद्धा का ज्ञान, भान नहीं, उसके ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं, ऐसा कहना है। समझ में आया? **इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होता है...** सम्यग्दर्शन होता है, उसे सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? **और सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है...** समझ में आया? सम्यग्ज्ञान से जीव, अजीव, पुण्य-पाप, संवर-निर्जरा-मोक्ष इत्यादि को यथार्थ जानता है। **तथा जब पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जाये,**

तब भला-बुरा मार्ग जाना जाता है। कल्याण-अकल्याण का आया न? श्रेय-अश्रेय। तब यह मार्ग भला है और यह मार्ग खोटा है, ऐसा ज्ञान होता ही है। मिथ्या को सच्चा और सच्चे को मिथ्या खतौनी नहीं करता। जहाँ सम्यग्दर्शन है, वहाँ ज्ञान सच्चा (होता है), वहाँ पदार्थ का ज्ञान सच्चा ही होता है, उसमें कल्याण-अकल्याण के मार्ग की उसे भलीभाँति खबर होती है। ऐसी गजब बात! साधारण लोगों को तो (कठिन लगती है)। महिलाएँ कहें, हमारी बुद्धि थोड़ी, इतना बड़ा हमें जानना?

मुमुक्षु : .....बुद्धि कहाँ छोड़ी?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बुद्धि छोड़ी, किसने कहा? परन्तु आत्मा महिला है ही कहाँ? आत्मा किसने कहा स्त्री है? किसने कहा? वह तो शरीर की-देह की, जड़ की, पुतली की पर्याय है। वह कहाँ आत्मा है, वह तो मिट्टी है। आत्मा अन्दर जो है, वह आत्मा तो सबके एक समान ही है। यह शरीर तो उसमें नहीं, परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प नहीं, ऐसा आत्मा है। आत्मा महिला कहाँ से आया? और आत्मा रागवाला कहाँ से आया? आत्मा आस्रववाला कहाँ से आया? ऐसे आत्मा के लिये ऐसा नहीं जानना कि यह शरीर हमारा ऐसा है और अमुक ऐसा है, इसलिए वे बड़े पुरुष हों, वे सब समझ सकते हैं और हम नहीं। ऐसा नहीं है। स्त्री का आत्मा भी अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर पाँचवाँ गुणस्थान प्राप्त करते हैं। समझ में आया? आत्मा है या नहीं? पुरुष का आत्मा होवे तो वह ठोठ विद्यार्थी जैसा रहे। हम पुरुष हैं, उसके अभिमान में मर जाए। ऐ.. सुजानमलजी! हम पुरुष हैं, हमें सब सामग्री मिली है। भगवान ने पुरुष को ही मोक्ष कहा है, स्त्री को मोक्ष नहीं कहा। आगे आयेगा। नियम में ऐसा होता है। मोक्ष है, स्त्री के योग्य दशा प्रगट होती है, उसके आत्मा की वह आत्मा से होती है। मन होता है, वह अलग बात है। मन तो पुरुष को भी होता है परन्तु उसे अभी केवलज्ञान नहीं है। इसका अर्थ क्या है? केवलज्ञान नहीं है, वह अपने पुरुषार्थ की कमजोरी है। प्रभुता की शक्ति को प्रगट करने की कचास है। उसमें आया न?

प्रभुता की शक्ति भगवान आत्मा, पूर्ण प्रभुता की शक्ति प्रगट करने की कमजोरी है। आहाहा! ....पुरुष के आत्मा को वह कमजोरी होती है, स्त्री के आत्मा को होती है। नपुंसक, हिजड़ा सम्यक्त्व प्राप्त करता है। क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा वहाँ (अभी

नरक में) नपुंसक है। ऐई! तीर्थंकर होनेवाले हैं, अभी नपुंसक है। नपुंसक है, वह क्षयोपशम ज्ञान होवे तो सम्यक्त्व प्राप्त करता है। नारकी प्राप्त करता है या नहीं? आगे आयेगा। नारकी को भी शील है। सम्यग्दर्शन के साथ उसे मिथ्यात्व का और कषाय का भाव गया है, उतना शीलपना उसे-नारकी को है। बाहर का शरीर देखो तो... आहाहा! कितना दोष है? ऐ... कहाँ गया? महेश! क्या कहता था सवेरे? नारकी को बहुत दुःख है।

मुमुक्षु : नारकी को बहुत दुःख है, तब भी सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे करते हैं, कहते हैं। शान्ति घड़ी भर नहीं है, ऐसा सवेरे कहता था, घड़ी की शान्ति नहीं। वह गर्भ समकित कैसे पावे? ऐई! अन्दर वीर्यवाला है। पहले समझ तो सही कि क्या है? नारकी में दुःख का पार नहीं होता तो वह तो पर है। वह यहाँ स्पर्श कब करता है? आहाहा! पर का लक्ष्य छोड़कर जहाँ स्व का लक्ष्य करे, वहाँ बाहर के दुःख में हूँ या उसमें आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो ज्ञान और आनन्द में है। समझ में आया? इतने-इतने सब साधन मिले और वहाँ तो क्षण की शान्ति नहीं और वह प्राप्त करता है। यह किस प्रकार? शान्ति नहीं न, यह तो सब खाना-पीना... देखो न! शरीर निरोगी, नींद ठीक से आवे, लड्डू चढ़ावे, रोटियाँ चढ़ावे, रोटियाँ चढ़ावे... उसको क्या कहते हैं? पूड़ी और अरबी के भजिया। आहाहा! ऐसी सुविधा और धर्म प्राप्त नहीं करे तथा उसको (नारकी को) शान्ति क्षण की नहीं और धर्म प्राप्त करे, यह तो क्या है यह? अरे! भगवान! बाहर की चीज़ वहाँ कहाँ विघ्न करती है?

जहाँ दृष्टि पर के ऊपर है, उसे उठाकर अन्दर करना, इतनी देर है। अब इसमें बाहर की चीज़ बाधक कहाँ है? अनुकूल होवे तो ठीक पड़े और प्रतिकूलता होवे तो ठीक न पड़े, यह वस्तु में ही कहाँ है? देवचन्दजी! सवेरे बोलता था, ठीक बोलता था। ...अशुभ टलता है, इसलिए उसे ऐसा हुआ, ऐसा कहता था। व्यवहार से अमृत कहा, वह अशुभ टलता है, इसलिए कहा। वाह! यह तो आत्मा है न! जानना है न, पहले जाने तो सही। समझ में आया? भगवान आत्मा अमृत की मूर्ति प्रभु है। उसकी दशा में अमृतपना, वह तो शुद्ध है। वह तो निश्चय है। व्यवहार में शुभ में अशुभ टलता है, इसलिए व्यवहार अमृत कहा जाता है। उसे अमृत का आरोप देकर अमृत कहते हैं, ऐसी शैली वहाँ ली नहीं। ओहोहो! कारण है। यहाँ टलने का साधन तो यह है, परन्तु ऐसे

साधन में पड़े हुए को जो शुभभाव होता है। अज्ञानी उतना राग वहाँ घटता है, वह तो स्वयं व्यवहार है न? व्यवहार में रागादि घटते हैं, इसलिए उसे अमृत कहते हैं। है तो जहर। वर्तमान दु:ख है। समझ में आया? शुभभाव वर्तमान दु:ख है, वह तो जहर है परन्तु उसमें अशुभ टलता है, इतनी अपेक्षा लेकर उसे अमृत कहा है। आहाहा! गजब बात है। ओहोहो! व्यवहार की बात है न! निश्चय तो यहाँ है। समझ में आया?

जब पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जाये तब भला-बुरा मार्ग जाना जाता है। इसप्रकार मार्ग के जानने में भी सम्यग्दर्शन ही प्रधान है। पदार्थ का ज्ञान और ज्ञान में प्रधानता सम्यग्दर्शन की है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ दर्शनपाहुड़ है। सम्यग्दर्शन मुख्य-प्रधान चीज़ है। उसमें कहा था कि वह मार्ग दूर है। हें? उस मार्ग की श्रद्धा और आत्मा का भान, वह सम्यग्दर्शन का इसमें मूल है। तब उसे आगे बढ़कर ज्ञान और चारित्र होता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१६

आगे, कल्याण-अकल्याण को जानने से क्या होता है, सो कहते हैं -

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।१६।।

श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदु:शील: शीलवानपि।
शीलफलेनाभ्युदयं तत: पुन: लभते निर्वाणम्।।१६।।

अश्रेय श्रेय सुजानता दुश्शील तज हो शीलयुत।
इस शील-फल से अभ्युदय पश्चात् उससे मोक्ष सुख।।१६।।

***अर्थ* - कल्याण और अकल्याणमार्ग को जाननेवाला पुरुष ''उद्धृतदु:शील:'' अर्थात् जिसने मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा दिया है - ऐसा होता है तथा ''शीलवानपि'' अर्थात् सम्यक्स्वभावयुक्त भी होता है तथा उस सम्यक्स्वभाव के फल से अभ्युदय को**

प्राप्त होता है, तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है तथा अभ्युदय होने के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त होता है।

भावार्थ – भले-बुरे मार्ग को जानता है, तब अनादि संसार से लगाकर, जो मिथ्याभावरूप प्रकृति है, वह पलटकर सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है; उस प्रकृति से विशिष्ट पुण्यबंध करे तब अभ्युदयरूप तीर्थंकरादि की पदवी प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त होता है।।१६।।